Chap-3

तृतीय अध्याय

हिन्दी एवं गुजराती प्रणयगीत काव्य का भावपक्ष

तृतीय अध्याय

"हिन्दी एवं गुजराती भ्रमर गीत काव्य का भावपक्ष"

हिन्दी एवं गुजराती भ्रमर-गीत-काव्य-परंपरा के निरूपण के पश्चात् प्रस्तुत अध्याय में दोनों भाषाओं के भ्रमर-गीत-काव्य के भावपक्ष का विश्लेषण कर लेना भी न केवल समीचीन है वरन् आवश्यक भी प्रतीत होता है। भाव विश्लेषण से भ्रमर-गीत-काव्य की मार्मिकता एवं भाव संपत्ति का आकलन भी हो जायगा। भ्रमर-गीत-काव्य आभ्यान्तरिक भावों की अभिव्यक्ति ही है। उसमें विरह-व्यथा, उपालंभ, रुदन एवं विलाप तथा यत्र-तत्र विरहजन्य करुण भावों की अभिव्यंजना हुई है। कृष्ण के विरह में व्याकुल माता यशोदा के हृदय से निकली हुई वात्सल्यपूर्ण भावों की धारा में कृष्ण विरह संतप्ता गोपिकाओं के आंसुओं की धार आकर मिल गई और इस प्रकार वात्सल्य एवं विरह श्रृंगार दोनों मिलकर एक हो गये प्रतीत होते हैं। इन वैविध्यपूर्ण भावों की छटा जैसी भ्रमर-गीत-काव्य में देखने को मिलती है वैसी अन्यत्र कम ही देखने को मिलेगी। यहां हम इन तथ्यों पर विचार करेंगे। पृष्ठ भूमि रूप में सर्वप्रथम हम विप्रलंभ श्रृंगार की संक्षिप्त चर्चा कर लेना भी उपयुक्त समझते हैं, तदुपरान्त इसी पृष्ठ भूमि पर हम भ्रमर गीत-काव्य में विप्रलंभ श्रृंगार तथा वात्सल्य की स्थिति पर विचार करेंगे।

(अ) विप्रलम्भ :

आचार्य विश्वनाथ ने विप्रलम्भ श्रृंगार की परिभाषा देते हुए कहा है -

"यत्रतुरति: प्रकृष्टा नाभीष्ट मुपैति विप्रलंभो सौ।"

(साहित्य दर्पण-३-१८७)

प्रेम की प्रकर्षता में जहां नायक-नायिका एक दूसरे से मिल न पायें वहां विप्रलंभ श्रृंगार होता है। विप्रलंभ श्रृंगार के चार भेद होते हैं :-

(१) पूर्वराग (२) मान (३) प्रवास (४) करुण।

प्रवास का इन चारों में प्रमुख स्थान है। भ्रमर-गीत में श्रीकृष्ण के मथुरा-गमन के पश्चात् ब्रज-वासियों की बिरह संतप्त दशा के भावपूर्ण चित्रों का आलेखन हुआ है। अत: स्पष्ट है कि भ्रमर-गीत काव्य का विरह वर्णन प्रवास के अन्तर्गत परिगणनीय है।

भ्रमर-गीत में प्रवास जनित विरह का वर्णन शास्त्रोक्त रूप में बंधा-बंधाया न होकर अधिक स्वतंत्र है। हिन्दी एवं गुजराती दोनों भाषाओं के कवियों ने इस प्रवासजनित विरह का वर्णन समानरूप से किया है। दोनों भाषाओं के कवियों की भावनाओं में समानता होते हुए भी वर्णन के ढंग अथवा अभिव्यक्ति में अवश्य अंतर है। भ्रमरगीत-परंपरा के प्राय: सभी कवियों ने वियोग का ऐसी विदग्धता से वर्णन किया है कि पाठक का मन तन्मय होकर भावलोक में विचरण करने लगता है। एक प्रकार से भ्रमर-गीत में भावोर्मियों का अपार सागर है। विरहानुभूति के सभी पक्ष इसमें साकार हो उठे हैं। विप्रलंभजनित शोक जब उमड़ता है तो गोपियों की अश्रुधाराओं से सारा ब्रज विकल हो उठता है।

शृंगार प्रकाश के रचयिता भोज ने प्रवास स्थित `वास` शब्द को उसके तीन अर्थों में ग्रहण करके विश्लेषित किया है। `वास`-शब्द का अर्थ निवास किया है। निवास का अर्थ है रहना। `प्र` उपसर्ग का अर्थ है प्रतिकूल अर्थात् प्रवास का अर्थ है चले जाना। प्रवास का यही अर्थ सबसे ज्यादा प्रचलित है। भोज ने `वास` का दूसरा अर्थ आच्छादन अर्थात् वस्त्र लिया है। `प्र` उपसर्ग के कारण विशेष प्रकार का `आच्छादन` अर्थ होता है। अत: भोज के अनुसार प्रवास शब्द प्रिय व्यक्ति के चले जाने पर नायिका द्वारा धारण किये गये विशेष प्रकार के वस्त्रों का निर्देश करता है। प्रवास का तीसरा अर्थ वियोगी के एकान्त नि:श्वासों से है। प्रिय पात्र से दूर होकर वियोगी को कष्ट होता है; इसी से उसको प्रवास कहते हैं। भोज का उपरिलिखित विवेचन प्रवास सम्बन्धी विरह की व्याख्या में निश्चय ही सहायक सिद्ध होता है।

साहित्यदर्पणकार ने विप्रलंभ शृंगार के अंतर्गत विरह की ११ दशाओं का

वर्णन किया है :- (१) अंगों में असौष्ठव (२) संताप (३) पांडुता (४) दुर्बलता (५) अरुचि (६) अधीरता (७) अस्थिरता (८) तन्मयता (९) उन्माद (१०) मूर्च्छा (११) मरण । प्रथम दस को स्वाभाविक काम दशाएं बताते हुए लिखा है कि मरण भी इसकी ११वीं दशा है ।[१]

प्राय: वियोग की दस दशाएं ही प्रचलित हैं । हिन्दी के आचार्यों ने दस दशाओं का ही अपने ग्रंथों में विवेचन किया है । इन दस दशाओं को हम भ्रमरगीत काव्य के अंतर्गत भी पाते हैं । यहां हम क्रमश: एक-एक दशा का सोदाहरण विवेचन करेंगे :-

१)अभिलाषा :

प्रेमांकुर की उद्भावना के बाद मिलन की इच्छा अत्यंत स्वाभाविक है । गोपियों के मन में अपने प्रियतम श्रीकृष्ण से मिलने की उत्कट अभिलाषा सदैव बनी रहती है । उनकी एक मात्र इच्छा यही है कि कृष्ण किसी प्रकार ब्रज वापस आयें । उनकी दशा स्वाति-बूंद के प्यासे चातक की सी है -

"कब देखौं इहिं भांति कन्ह ऐहैं ।
मोरनि के चंदवा माथे पर,
कांध कामरी लकुट सुहाई ।"[२]

२) चिन्ता :

प्रिय पात्र के मिलन के अभाव में मन में भांति-भांति की शंकाओं का उठना या तर्क-वितर्क होना अत्यंत स्वाभाविक है । गोपियों को सोते, उठते जागते कार्यरत रहते प्रत्येक अवस्था में अपने प्रियतम कृष्ण की चिन्ता रहती है । वियोग के कारण उनका चित्त सदा चिंताओं से बोझिल रहता है :-

---

१- त्यक्तवीप्रमरणालस्य जुगुप्सा व्यभिचारिण: ।
साहित्यदर्पण : विश्वनाथ, ३।१८६

२- सूरसागर पद- ३८३६

"गोविन्द बिनु कौन हरै नैननि की जरनि ।
चांद निसा अनिल मंद, चन्द भयो तरनि ।
तन में सन्ताप भयो दुरयो, अनन्द धरनि ।"[१]

३) स्मृति :

श्रीकृष्ण के जाने के उपरान्त गोपियां उनकी स्मृति से विह्वल होती हैं । उनकी याद उन्हें बार-बार सताती है । कभी मीठी बातें तो कभी उनके साथ खेलना-कूदना और खाने-पीने के प्रसंग याद आते हैं । प्रियतम ने किस प्रकार हाथ पकड़कर उठाया था, किस प्रकार गिरते हुए बचाया था, झूले पर झुलाया था, किस प्रकार गोदी में लिटाकर सिर पर हाथ फेरा था आदि समागम के सुखों का स्मरण होना स्वाभाविक है :-

"एक बेर खेलत बृन्दावन कंटक चुभि गयो पांय,
कंटक सो कंटक लै काढ्यौ अपने हाथ सुभाय ।
एक दिवस निहरत मन भीतर मैं जो सुनाई भूख,
पाके फल नै देखि मनोहर चढ़े कृपा करि रूख ।
ऐसी प्रीति हमारी उनकी बसते गोकुल लाप,
सूरदास प्रभु सब बिसराई मधुबन कियो निवास ।"[२]

और

हरि तेरी लीला की सुधि आवति,
कमलनैन मनमोहनी मूरति मन चित्त बनावति ।
एक बार जाय मिलत मया करि सो कैसे बिसरावति ।
मृदु मुसकानि बंद अवलोकनि वाणि मनोहर भावति ।
कबहुंक निविड़ तिमिर आलिंगनि कबहुंक पिक स्वर गावति ।
कबहुक सम्भ्रम त्रासि त्रासि अरि संग हीन उठि धावति ।

१- सूर सागर पद ३६६२

२- भ्रमरगीतसार : सं० पं० रामचन्द्र शुक्ल, पद नं० ११२

कबहुंक नयन मूदि अंतरगति बन माला पहिरावति ।
परमानन्द प्रभु स्याम ध्यान करि ऐसे विरह गंवावति ।

विरह की असह्य व्यथा में क्षणों में गोपियां श्रीकृष्ण की लीलाओं का स्मरण करती रहती हैं । हरिऔध जी की गोपियां शरद पूर्णिमा की रास लीला का स्मरण करती हैं :-

जैसी बजी मधुर वीन मृदंग बंशी
जैसा हुआ रुचित नृत्य विचित्र गान ।।
जैसा बंधा इस महानिशि में समा था ।
होगी न कोटि मुख से उनकी प्रशंसा ।।

४) गुण कथन :

भ्रमरगीत काव्य में गुण कथन को भी यथेष्ट महत्त्व प्रदान किया गया है । गोपियां श्रीकृष्ण के सुन्दर रूप तथा गुणों को याद करती हैं -

"मधुकर । स्याम हमारे चोर ।
मन हरि लियो माधुरी बूढ़ि मूरति चितै नयन की कोर ।।
पकर्‌यो तेहि हिरदय उर-अन्तर प्रेम - प्रति के के जोर ।
गये छुड़ाय छोरि सब बंधन दै गये हंसनि पंकोर ।।
सोवत तें हम उठकि परी हैं दूत मिर्‌यो मोहिं मोर ।।
सूर स्याम मुसकनि मेरो सर्बस लै गये नन्द किसोर ।।

(भ्रमरगीत सार-आचार्य रामचन्द्र शुक्ल -
विश्वनाथप्रसाद मिश्र-पृ० ५६, पद १४६)

और

कोउ कहै री । मधुप भेस उनही को धार्‌यो ।
स्याम पीत पुंगार बैन किंकिन झकार्‌यो ।।
ता सुर गोरस चोरि कैं लायो फिर यहि देस ।
उनको जनि मानहु कोऊ अपटी इनको भेस ।।

५) उद्वेग :

विरही का मन व्याकुलता के कारण किसी भी उद्योग में नहीं लगता । संताप से सारे अंग कुंज-पुंज से हो जाते हैं । मिलन की बेला जैसे -जैसे दूर हटती जाती है कि विरह व्यथा इतनी तीव्र से तीव्र हो जाती है कि उसे कोई बात नहीं सुहाती । प्रिय-विरह के कारण गोपियों को सुखद वस्तुएं भी दु:खदायिनी प्रतीत होने लगती हैं । विरही मन की इसी विकल दशा का नाम उद्वेग है । अष्टछाप के सूर, परमानंददास आदि कवियों ने इस भाव का सुन्दर वर्णन भ्रमर-गीत के प्रसंग में किया है :-

"कमल नयन बिन और न भावै, अह निस रसना कान्ह कान्ह रट ।
रोदन करि कैं नैन गंवाये, बिलख बदन ठाढ़ी जोवति वह ।।
तुमरे परस बिन बृथा जात है, मेरे उरज धरे कंचन घट ।
नंद गोप सुन जबहि मिलहुगे, तबहि होहिंगी सीस सकुल लट ।।
दुर्लभ देह लाड़े सबहि सुख, बातें बिसरी मलिन भये यह ।।
परमानन्द प्रभु अबहि बिसरि गयो, हमरो तुम्हरो खेल जमुन तट ।।[१]

और

बिनु गोपाल बैरनि भई कुंजैं ।
तब वै लता लगति अति सीतल
अब भई विषम ज्वाला की पुंजैं ।
+ + +
सूरदास प्रभु तुम्हरे दरस कौं, मग जोवत अंखियां भई कूजैं ।[२]

६) प्रलाप :

कभी-कभी ऐसा भ्रम होने लगता है कि प्रियतम आ गये । इसी भ्रमवश विरही प्रिय के प्रति निरर्थक प्रलाप करने लगता है । विरह वेदना से बोझिल होकर कभी-कभी

१- परमानन्द सागर : सं० डा० गोवर्धननाथ शुक्ल, पद ५४१

२- सूरसागर, पद ३९६२

अपने को ही भला-बुरा कहने लगता है। गोपियां भी इस नियम का अपवाद नहीं। कभी-कभी खीज के कारण वे उपालंभ भी देने लगती हैं। सूर की गोपियां उन्मत्त होकर प्रलाप करती हैं -

"कैसे० बब बह० कके जल १० बुलाब

"कैसे पनघट जाऊं सखी री, डोलौ सरिता तीर।
भरि-भरि जमुना उमड़ि चली है, इन नैनन के नीर।।

\+ + +

(हौं तो मोहन के) बिरह जरी, तू कत जारत।
रे पापी तू पंखि पपीहा, पिय पिय करि अधराति पुकारत।"[1]

७) उन्माद :

बिरह परिताप के कारण विरही का मानसिक संतुलन बिगड़ जाता है। भावावेश में व्यर्थ ही रुदन, हंसी, तकवास आदि स्वाभाविक हो जाते हैं :-

"कोउ कहै - अहो दरस देत पुनि लेत दुराई।
यह कुल विद्या कहो कौन पिय तुम्हैं सिखाई।।
हम पर-बस आधीन हैं ता ते बोलत दीन।
जल बिनु कहौ कैसे जिएं गहि रे जल की मीन।।
विचारहु रावरे।[2]

८) व्याधि :

वियोग परिताप जन्य शारीरिक कृशता या अस्वस्थता का नाम व्याधि है। विरह एक प्रकार से व्याधि रोग ही है जिसकी एक मात्र औषधि प्रिय मिलन ही है। मानसिक संताप के कारण ताप, कम्प आदि का स्वाभाविक अनुभव होता है - भ्रमरगीत रूप में सूरदास की निम्नलिखित पंक्तियों से व्याधि दशा का उल्लेख इस प्रकार हुआ है।

१- सूरसागर पद ३९५७

२- भंवरगीत : नंददास पद ३१

"कर कंकन तैं भुज हाड़ भई ।
मधुजन चलत स्याम मन मोहन ।
आवन अवधि सु निकट दई ।।
पाती लिखत बिरह तन व्याकुल
कागर हैव गयौ नीर भई ।।"[१]

९) जड़ता :

अत्यधिक संताप के कारण किंकर्तव्यविमूढ़ हो जाने का नाम जड़ता है। विरही को अपनी सुध-बुध नहीं रहती और वह निश्चेष्ट एवं निरुपाय सा होकर एकटक देखने लगता है और चुप हो जाता है या आंसुओं की अविरल धारा बरसाता रहता है :-

"सुनत स्याम को नाम ग्राम गृह की सुधि भूली ।
भरि अनंद रत हृदय, प्रेम बेली -द्रुम फूली ।।
पुलकि रोम सब अंग भए, भरि आये जल नैन ।
कंठ घुटे गदगद गिरा, बोलै जातन बैन ।।"
व्यवस्था प्रेम की ।"[२]

१०) मूर्च्छा :

प्रिय मिलन के अभाव में विरही का रोग असाध्य सा हो जाता है। उसे मूर्च्छा आने लगती है और वह संज्ञाहीन बन जाता है -

मेरे मन इतनी सूल रही ।
वे बतियां छतियां लिखि राखीं जे नंदलाल कही ।।
सोचति अति पछताति राधिका मुर्च्छित धर नि टही ।
सूरदास प्रभु के बिछुरे तें बिथा न जाति सही ।।"[३]

१- सूरसागर : ४६७९

२- भंवरगीत : नंददास -पद ३

३- सूरदास पद ४०१४

११) मरण :

मरण दशा का वर्णन वियोग शृंगार में वर्जित है।[१] मरण वह अंतिम मूल्य रेखा है जिसके पार विप्रलंभ का जाना असंभव है। जब किसी भी प्रकार से प्रिय-मिलन की आशा शेष नहीं रह जाती, उस आशापूर्ण मनोदशा का नाम ही एक प्रकार से मरण दशा है -

"यहि विधि सुमिरि गोविन्द कहत ऊधव प्रति गोपी।
भृंग संज्ञा करि कान्ह सकल कुल लज्जा लोपी।।
ता पाछै इस बार ही राखि सकल ब्रजनारि।
हा करुनामय। नाथ हौ केसव। कृष्ण। मुरारि।।
कांटि कियरो चाल्यौ।"[२]

और

जौ पै कोउ मधुबन को जाइ।
मतिया लिखी स्यामसुन्दर कौं, कंकन देहौं ताई।।
नैन-नीर सारंग-रिपु-भीजत, जुग-सपरैनि बिहाइ।
अब यह भवन भयौ पावक सम, हरि बिनु मोहिं सुहाई।
पिछली प्रीति कहा भई ऊधौ, मिलते बेनु बजाई।
सूरदास प्रभु प्रान गये ते, कहा करौगे आइ।।[३]

भ्रमरगीत का भाव-सौन्दर्य विस्तृत है। भ्रमरगीतकारों ने स्थूल कथा के वर्णन की अपेक्षा भाव-व्यंजना को ही प्राधान्य दिया है। सूरदास और रामानन्ददास के काव्य में विरह की अनूठी व्यंजना दृष्टिगोचर होती है। परन्तु भ्रमरगीतकारों में बुद्धि एवं कलापक्ष का प्राधान्य मिलता है। बुद्धि पक्ष के प्राधान्य के कारण नंददास और रत्नाकर के भ्रमरगीत दार्शनिकता से बोझिल हैं।

१- व्यक्त चौर चमरणालस्य जुगुप्सा आभिचारिण : ।साहित्य दर्पण-३।१८६

२- भंवरगीत : नंददास पद ६०

३- सूरसागर पद ४५६२

भ्रमरगीत में विरही जीवन के कई प्रभावोत्पादक चित्र उपस्थित किये गये हैं। इन चित्रों में अनुभूति का गहरा रंग विद्यमान है। संयोग के क्षणों में आनन्द और उल्लास प्रदान करनेवाले पदार्थ वियोग के क्षणों में मार्मिक पीड़ा उत्पन्न करते हैं। श्यामसुन्दर की लिखी पत्रिका को देखते ही गोपियों की आंखों में से अश्रु प्रवाह बहने लगता है। इस नयन-जल से पत्रिका के अक्षर भीग जाते हैं और मसि के फैल जाने के कारण श्याम की पत्रिका श्याम हो जाती है -

"निरखति अंक स्यामसुन्दर के, बार-बार लावति लै छाती।
लोचन जल कागद मसि मिलि कै, ह्वै गई स्याम स्याम की पाती।।"[1]

गोपियां आपादचूड़ श्रीकृष्ण के ध्यान में मग्न हैं। उनका मन पूर्णतया कृष्ण पर आसक्त है। कृष्ण के अतिरिक्त अन्य किसी का ध्यान करने में वे असमर्थ हैं :-

"नाहिन रह्यो मन में ठौर, नंदनंदन अछत कैसे, आनिये उर और।"[2]

मैथिलीशरण गुप्त जी ने विरहातुर गोपियों के हृदय की भाव-व्यंजना अत्यंत मार्मिक शब्दों में की है -

"जो सब को देखे, पर निज को भूल जाय उस मति सी।
अपने परमात्मा से बिछुड़े, जीवात्मा की गति सी।
चन्द्रोदय की बाट जोहती, तिमिर तारा मालासी।
एक-एक ब्रज बाला बैठी, जागरण्क ज्वाला सी।"[3]

भ्रमरगीत काव्य में विरह की इतनी तल्लीनता और तन्मयता है कि पाठक के सम्मुख एक चित्र सा उपस्थित हो जाता है। गोपियों का मन श्रीकृष्ण में इतना लीन है कि यमुना के जल में भी उन्हें अपनी मन:स्थिति का प्रतिबिम्ब दिखाई देता है -

"देखियत कालिन्दी अति कारी, कहियो पथिक जाय हरि पाँ ज्यों,
भई विरह जुर भारी।।"[4]

१- सूरसागर-पद : ४१०६

२- भ्रमरगीतसार सं० आचार्य रामचन्द्र शुक्ल पद ६५

३- द्वापर : मैथिलीशरण गुप्त, पृष्ठ-६६२

४- सूरसागर पद :३८१०

मिलन के मधुर क्षणों में जो शक्ति सुखद प्रतीत होती थी वह वियोग के इन दुस्सह्य क्षणों में भुजंगिनी ज्ञात होती है -

"प्रिया बिनु सांपिन कारी राति, कबहुं जुन्हैया होत जामिनी रस उलटी ह्वै जाति ।"

हरिऔध जी की राधा को तो भृंग, चांदनी, मृग और कमल में प्रियतम का ही प्रतिबिम्ब दिखाई पड़ता है :-

"मैं पाती हूं फलक सुषमा भृंग की कालिमा में
हैं आंखों की सुछबि मिलती खंजनों औ मृगों में
दोनों चाहें कमल कर जो देख हैं याद आतीं
पाई शोभा अचिर शुक के ठोर में नासिका की ।"[१]

भ्रमरगीत काव्य में जैसा कि अन्यत्र कहा जा चुका है वैविध्यपूर्ण रसधारा प्रवाहित हुई है । संपूर्ण भ्रमरगीत काव्य उसके रचयिताओं की संवेदन-शीलता का परिचायक है । विरहिणी गोपियों का सजीव चित्रण ही इसका प्रमुख परिपाद्य है । उसका अधिकांश अन्तस्तल की मार्मिक वेदना से युक्त है । प्रस्तुत प्रसंग में वात्सल्य वियोग सम्बंधी पद भी प्राप्त होते हैं । अनेक भ्रमरगीतकारों ने माता यशोदा के विरह का भी अत्यंत मार्मिक चित्रण किया है अतएव वात्सल्य वियोग की भी चर्चा कर लेना युक्ति युक्त होगा ।

वात्सल्य वियोग :

भ्रमरगीत काव्य परंपरा में विरह वात्सल्य का वर्णन दर्शनीय है । माता-पिता के हृदय में अपनी संतान के प्रति जो प्रेम होता है वही वात्सल्य रस का स्थायी भाव है । श्रीकृष्ण के मथुरागमन से उत्पन्न पिता नंद एवं माता यशोदा का यह वात्सल्य वर्णन वियोग पक्ष के अंतर्गत परिगणनीय है और प्रवासजनित ही है । मां यशोदा श्रीकृष्ण के विरह में उन्मत्त हो जाती हैं । विरह की तीव्रतम वेदना के कारण वे आत्मज्ञान खो बैठी हैं । उनके हृदय की आकुलता-व्याकुलता का वर्णन भ्रमरगीत के

१- प्रिय प्रवास : हरिऔध -नवम संस्करण षोडश, पृष्ठ २५१ सर्ग-८५

कवियों ने अत्यंत मार्मिकता के साथ किया है। कृष्ण रहित सूना घर उन्हें काटने लगता है। जब कन्हैया घर में था और सभी चीजें इधर-उधर बिखेर देता था तब उन्हें क्रोध आता था। आज सभी चीजों को अपने स्थान पर पाकर भी उन्हें दुःख होता है -

"मेरे कुंवर कान्ह बिनु सब कुछ जैसहि धरयौ रहै।
जो उठि प्रात होत लै माखन को कर नेति गहै।।
सूने भवन जसोदा सुत के, गुन गुनि सूल सहै।
दिन उठि घर घेरत ही ग्वारिनि, उरहन कोउ न कहै।।
जो ब्रज में आनंद हुतौ, मुनि मनसा हू न गहै।
सूरदास स्वामी बिनु गोकुल, कौड़ी हू न लहै।।"[१]

जब श्रीकृष्ण गोकुल में थे, उनकी लीलाओं से ब्रजभूमि का चप्पा-चप्पा आनंद और उल्लास से युक्त था। यशोदा, नंद, गोपिकाएं और गोप सभी अप्रतिम सुख का अनुभव करते थे। श्रीकृष्ण के मथुरागमन से ब्रजवासियों के रंग में भंग हुआ। यशोदा का हृदय अपने प्राण प्यारे पुत्र के वियोग में निरंतर जलता रहता है। उनका हृदय पुत्र वियोग की विकल वेदना से भर जाता है। पुत्र वियोगिनी माता के हृदय की व्यथा को अधिकांश भ्रमरगीतकारों ने वाणी प्रदान की है। नंद को दशरथ के समान पुत्र वियोग के कारण प्राण त्याग न करने पर यशोदा जी उलाहना देती हैं।[२] उन्हें

१- सूरसागर पद ३७६६

२- नंद हरि तुमसौं कहा कह्यौ।
सुनि सुनि बिदुर बचन मोह के कैसें हृदय रह्यौ।।
छांडि सनेह चले मंदिर कत, दौरि ते चरण गह्यौ।
दरकि न गई वज्र की छाती, कत यह सूल सह्यौ।।
+ + +
उन्हें छांड़ि गोकुल कत आए, चाखन दूध दह्यौ।
तजे न प्रान सूर दसरथ लौं, हुतौ जन्म निबह्यौ।।
- सूरसागर पद ३७५५

पुत्र -वियोग इतना अखर रहा है कि वह ब्रज छोड़कर मथुरा में देवकी और वसुदेव की दासी भी बनकर रहने को तैयार हैं -

"हौं तौं माई मथुरा ही पै जैहौं ।
दासी ह्वै बसुदेव राइ की दरसन देखत रैहौं ।
मोहि देखि के लोग हँसैंगे, अस किन कान्ह हँसे ।[1]
सूर असीस जाइ रहौं, प्रनि न्यातहु बस खसौं ।

वात्सल्य एक व्यापक वृत्ति है । मनुष्य की मूलभूत एषणाओं में पुत्रैषणा को महत्वपूर्ण माना गया है । दाम्पत्य का समाहार वात्सल्य में ही होता है । वात्सल्य का पूर्ण अनुभव माता को ही होता है । यही कारण है कि यशोदा की अपेक्षा नंद का उल्लेख कम हुआ है । उद्धव जी के आने पर नंद पूछते हैं कि क्या वे कभी हमारी याद करते हैं ? उन्हें इस बात का पछतावा अवश्य है कि परब्रह्म के अवतार कृष्ण को अपने यहाँ पाकर भी उनकी अच्छी सेवा न कर सकें :-

हम तैं कछु सेवा न भई ।
धोखैं ही धोखैं जु रहे हम, जाने नाहिं त्रिलोक मई ।[2]

ठीक

विप्रलंभ -वात्सल्य की इस धारा की ध्वनि उद्धव के कृष्ण के प्रति निवेदन में भी परिलक्षित होती है । कृष्ण के सम्मुख वे नंद एवं यशोदा के वात्सल्य का वर्णन मार्मिक शब्दों में करते हैं :-

"नंद जसोदा मारग जोवति निसदिन सांझ सकारे,
चहुं दिस कान्ह कान्ह कहि टेरत अंसुवन बहत पनारे ।[3]

सूरदास जहाँ पुत्रवती जननी के प्रेमयुक्त हृदय को छूने में समर्थ हुए हैं, वहाँ वियोगिनी माता के करुणा-विचलित हृदय को भी छूने में समर्थ हुए हैं ।[4] नंद वात्सल्य भाव के दूसरे पात्र हैं । वात्सल्य से परिपूर्ण पिता के हृदय की झलक उनके भावों

१- सूरसागर पद ३७८६
२- वही, पद-४०६३
३- वही, पद :
४- सूर साहित्य : हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृष्ठ १२६

में मिलती है। वे पिता के प्रेम से पूरित परन्तु अपने मन की व्यथा पर निग्रह रखने वाले हैं। मैथिलीशरण जी गुप्त के नंद अपने पुरुषत्व की रक्षा के हेतु रोना भी एकान्त में चाहते हैं ; ताकि दूसरे प्राणी उनके दुःख से दुःखी न हों :-

"तब तक मैं भी तनिक अकेला रह कर जी भर रो लूं।[1]
मानस के जल से मुख धो लूं ---------- ।

वात्सल्य रस के निरूपण में मातृ-हृदय एवं पितृ-हृदय का वैभव भ्रमर-गीत काव्य में सहज परिलक्षित होता है। भ्रमरगीत में मानवीय मनोभावों का सुन्दर चित्रण हुआ है, किन्तु मानवीय मनोवृत्तियों को प्रभावित करने में प्रकृति का बहुत बड़ा योगदान रहा है। काव्य में तो प्रकृति अनिवार्य रूप से वर्णित होती आई है। भ्रमरगीत में वियोग-वर्णन के प्रसंग में प्रकृति का उपयोग किया गया है - विरह विषमता के प्रभाव से प्रकृति भी नहीं बच पाई है। अतएव गाव वर्णन के अन्तर्गत हम प्रकृति का भी समावेश कर लेना समीचीन मानते हैं।

प्रकृति वर्णन :

मानव और प्रकृति का सम्बन्ध मनुष्य जीवन के प्रारंभ से ही रहा है। भ्रमरगीत काव्य का प्रमुख विषय गोपियों के विरह की मार्मिक अभिव्यक्ति है। प्राकृतिक परिवेश के द्वारा यह विरह अधिक तीव्र हो उठा है। वृन्दावन प्रकृति का सुरम्य प्रांगण है जो श्रीकृष्ण की क्रीड़ाओं का प्रमुख केन्द्र रहा है। वृंदावन के सुरम्य कुंजों की स्मृति श्रीकृष्ण के मानसपटल पर अंकित है। उद्धव को ब्रज भेजते समय श्रीकृष्ण वृन्दावन का उल्लेख करते हैं :-

"मित्र एक जन बसत हमारे ताहि मिलैं सुख पाइहौ।
करि करि समाधान नीकौं विधि, मोलौं मायौं नाइहौ ।।
रघपदु जनि तुम सघन कुंज मैं, हैं तहं के तरुभारी।
वृंदावन मनि रहति निरंतर, कबहुं न होति निवारी ।।"[2]

१- द्वापर : मैथिलीशरण गुप्त- चतुर्थ संस्करण-पृष्ठ १३३

२- सूरसागर : पद ४०६८

भ्रमरगीत में अधिकांश प्रकृति चित्रण उद्दीपन रूप में हुआ है। गोपियों को वृन्दावन की प्रकृति से साहचर्यजनित सहज स्नेह था। वृन्दावन के तरु, गुल्म, पशु-पक्षी और परिवर्तित प्राकृतिक ऋतुजन्य सुषमा के प्रति उनका अनन्य आकर्षण था। उनका उन्मुख जीवन प्रकृति की क्रोड़ में ही विकसित हुआ था। वे एक प्रकार से प्रकृति के साथ घुलमिल गई थीं। यही मोहक और मादक प्रकृति विरह के क्षणों में उनके लिये असह्य दु:खदायिनी बन जाती है। आज प्राकृतिक परिवेश उनके लिये विषम हो उठा है। वृन्दावन की प्रकृति के परिपार्श्व में उनकी विरह व्यथा अधिक बढ़ जाती है -

"बिनु गोपाल बैरिन भई कुन्जैं
तब ये लता लगति अति शीतल
अब भई विषम ज्वाला की पुंजै"[1]

वृन्दावन का हरा भरा वन अब उनके लिये असह्य हो उठा है। मिलन के क्षणों में जो वस्तुएं सुखद प्रतीत होती थीं वे अब उन्हें अच्छी नहीं लगतीं। मधुवन को हराभरा देखकर वे उलाहना देती हैं -

"मधुवन तुम क्यों रहत हरे।
विरह वियोग स्याम सुन्दर के ठाढ़े क्यों न जरे।"[2]

वर्षा ऋतु में उनकी वेदना और बढ़ जाती है। बादलों के गर्जन से गोपियां भयभीत हो उठती हैं :-

"ब्रज पर बदरा छाये गाजन। मधुवन कोप ठए गुनि सजनी,
फौज मदन लग्यो बाजन।"[3]

गुप्त जी की गोपियां भी प्रिय विरह के कारण प्राकृतिक विपर्यय का अनुभव करती हैं -

"आना था तो तब आते तुम जब यमुना लहराती।
अब तो महराती जाती है, देखो यह हहराती।।
उड़ती है बस धूल आज तो, कौन करे रस दोहन।
आकर एक अलभ्य लाभ -सा, गया भरम-सा मोहन।।"[4]

१- सूरसागर : पद-४६८७

२- वही, : पद ३८२६
३- वही, : पद ३६२१
४- द्वापर : मैथिलीशरण गुप्त: पृष्ठ ३६१

'रत्नाकर जी' ने भी विरहिनी गोपियों के लिये सभी ऋतुओं का दुःखदायी और विपरीत होना चित्रित किया है। जो प्रकृति संयोगावस्था में ~~दुःख~~ आनंदित करती है वही प्रकृति वियोगावस्था में दुःख बढ़ाती है। मुरली अब गोपियों के लिए सपत्नी बन जाती है। विरह के क्षणों में निकुंज, मोर, चातक, पिक, चंद्र सब के सब गोपियों को संताप देने लगते हैं। प्रकृति के विभिन्न अवयव विरह को उद्दीप्त करते हैं।

उपालंभ काव्य :

हिन्दी का भ्रमरगीत काव्य एक प्रकार से उपालंभ काव्य का पर्यायवाची शब्द बन गया है। उपालंभ काव्य में मानवीय हृदय की गहरी और मार्मिक अभिव्यक्ति होती है। इसका आधार गहरी आत्मीयता और प्रेम है। प्रेमी अपने प्रिय पात्र से अलग होकर विकल और विह्वल हो जाता है। उसकी मिलनोत्कंठा तीव्र होकर उसे व्यथित कर देती है। इस भावावेग में उसके मन में प्रेम की अनुभूति अधिक गहरी होती है। ऐसी स्थिति में प्रेमी अपने प्रिय पात्र को उपालंभ देता है। उपालंभ का सामान्य अर्थ है शिकवा-शिकायत। हिन्दी साहित्यकोश में उपालंभ के सम्बन्ध में लिखा है - "नायक को उलाहना देकर उसको नायिका के मनोनुकूल करना ही उपालंभ है।----- शृंगार के वियोगपक्ष में उपालंभ संयोग की आकांक्षा से अनुगुंजित रहता है। उसमें प्रिय का सारा पिछला प्रेम व्यापार उसकी निष्ठुरता के रूप में चित्रित किया जाता है।"[१] भ्रमरगीत काव्य में परंपरा के रूप में उपालंभ को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त हुआ है।

भ्रमरगीत काव्य विरह प्रधान काव्य है जिसमें उपालंभ का प्रमुख आधार श्रीकृष्ण का मथुरागमन है। नंद-यशोदा, गोपियां, राधा, गोप, ग्वालबाल सभी उनके वियोग में दुःखी और व्याकुल हो जाते हैं। श्रीकृष्ण के वापस आने की आशा जब धीरे-धीरे नष्ट हो जाती है तब उनकी व्याकुलता अधिक बढ़ जाती है। परिणाम-स्वरूप गोपियों की ~~विरह~~ विरह-वेदना अधिकांश उपालंभ के रूप में व्यक्त हुई है। जो उपकरण संयोगावस्था में आनंद और उल्लास के कारण होते हैं, वे उपकरण

१- हिन्दी साहित्य कोश : भाग : १ : पृष्ठ-१७८